पूर्वोत्तर प्रभा
(सिक्किम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)
Journal Home Page: **http://supp.cus.ac.in/**

हिंदी सिनेमा में चित्रित आदिवासी समुदाय

रवि कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
ईमेल - ravi04161@gmail.com

शोध सार : साहित्य से हमें संवेदना मिलती है और सिनेमा से विचार। इन्हीं संवेदनाओं और विचारों से मनुष्य जीवन संचालित होता है। हमारा जीवन तमाम भौतिक घटनाओं से प्रभावित होता आया है। उन्हीं में से मनुष्य जीवन में सिनेमा का देखा जाना भी सबसे विचित्र और प्रभावित घटना है। 110 सालों के सिनेमाई इतिहास ने समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा के इतने लंबे सफर के बाद भी हिंदी फिल्मों में आदिवासी समुदाय अपनी यथार्थ संस्कृति के रूप में अछूता ही रहा है। भारतीय आबादी में करीब 8 प्रतिशत की हिस्सेदारी आदिवासी समुदाय की हैं। इस समुदाय की अपनी समृद्ध संस्कृति और परंपराएं हैं, जिनका आधार प्रकृति है। उनके अपने लोकगीत और लोकनृत्य हैं, परंतु भारतीय फिल्मों में उन्हें हमेशा दोयम या उपद्रवी दिखाया जाता है। सदमा, विलेज गर्ल, अलबेला और रावण जैसी फिल्में इसका मुख्य उदाहरण हैं। उनकी संस्कृति को असभ्य बताकर उनका अपमान, साथ ही उन्हें जंगली बताकर हास्यास्पद दिखाया जाता है "एडवेंचर्स ऑफ टार्जन" ऐसी ही एक फिल्म है। इस सब के बावजूद कुछ फिल्में ऐसी भी हैं जो आदिवासी संस्कृति के बहुत करीब हैं। मृगया और न्यूटन जैसी फिल्में हैं जो आदिवासी संघर्ष और परंपराओं को यथार्थ रूप में रखने का प्रयास करती हैं।

बीज शब्द : सिनेमा, आदिवासी समुदाय, संस्कृति, मृगया, न्यूटन

मूल आलेख

आदिवासी से अभिप्राय जो वहां के मूल निवासी हो,जिसकी अपनी संस्कृति, धर्म, भाषा और एक अलग पहचान होती है। इनकी अपनी परंपराएं, विश्वास, और रीति रिवाज हैं। इनका एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र है जिसके लिए ये हमेशा जागरूक होते हैं। इसी जागरूकता से उपजे प्रतिरोध को हम आदिवासी विमर्श कहते हैं। आदिवासी विमर्श एक बड़ी बहस है। जिसकी चर्चा हम साहित्य, राजनीति और सिनेमा में भी करते हैं,.. सामान्यतः आदिवासी विमर्श देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति भेदभाव का विरोधी है। यह जल, जंगल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के 'आत्मनिर्णय' के अधिकार की माँग करता है। किंतु हिंदी सिनेमा के सौ वर्ष के पश्चात आज भी आदिवासी समुदाय हिंदी फिल्मों में मूल रूप से अछूता ही रहा है। इसका मुख्य कारण राजनैतिक व्यवस्था से उपजी एक सोच है जिसकी चपेट में हम सभी आ चुके हैं। और इसी सोच की प्रक्रिया में आकर डायरेक्टर, अभिनेता, प्रोड्यूसर और दर्शक भी काम करते हैं। एक लंबा सफर गुजर जाने के बाद भी हिंदी फिल्मों में आदिवासी समुदाय को दोयम दर्जे का दिखाया जाना व उनकी संस्कृति को हास्यास्पद रूप में प्रस्तुत करना कला सिनेमा की दुर्गति है। आज भी ज़्यादातर फिल्मों में आदिवासी समाज को जंगल में रहने वाले असभ्य मनुष्यों, लगभग राक्षसों, के रूप में दिखाया गया है। हिंदी फिल्मों के इतने अधिक वर्ष बीत जाने के बाद भी आज तक इस स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। कई फिल्मों में आदिवासियों को नाचते-गाते तो कभी अर्धनग्न और कभी-कभी पत्ते लपेटे हुए तक दिखाया जाता है। इन फिल्मों में जो गीत परोसे जाते हैं और नाच दिखाया जाता है, उनका वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं है। भारतीय सिनेमा के शुरुआती दौर में एक फिल्म बनी 'रोटी' (1942) जो पूंजीवादी विचारधारा की मुखालिफत करती है। उसमें भी दर्शकों को आकर्षित करने के लिए आइटम डांस के रूप में आदिवासियों को फूल-पत्ती लपेटकर रूमानी मुद्रा में नृत्य

करते हुए दिखाया गया है। बिमल रॉय द्वारा निर्देशित 1958 में बनी फिल्म 'मधुमती' एक बेहतरीन फिल्म थी, पर उसमें भी आदिवासियों को नाचते-गाते हुए रूमानी अंदाज़ में दिखाया गया है। ऐसी ही कई और फिल्मों के नाम गिनाए जा सकते हैं, जिनमें आदिवासी समुदाय और उनके नृत्यों को केवल मनोरंजन के तौर पर रखा गया है। विलेज गर्ल(1945), अलबेला(1951), नागिन(1954), यह गुलिस्तां हमारा(1972) और एडवेंचर्स ऑफ टार्जन(1985) आदि। आदिवासी असभ्य हैं, इस नज़रिए से इस विशाल समुदाय को देखने और दिखाने वाले उस यथार्थ को नज़रअंदाज़ करते हैं कि आदिवासी समुदाय के लोग आज भी प्रकृति के सबसे करीब हैं और यह इसके बावजूद कि उनका जीवन अभावग्रस्त है। वे प्रकृति को नुकसान नहीं पहुंचाते हुए साधारण विकास के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

फिल्मों की शुरूआत में फिल्मकार यह अवश्य लिख देते हैं कि फिल्म में प्रदर्शित घटनाक्रम काल्पनिक हैं, लेकिन इससे किसी समुदाय को गलत तरीके से प्रस्तुत किये जाने की अपनी ज़िम्मेदारी से वे मुक्त नहीं हो सकते हैं। आख़िरकार फिल्मकार की कल्पना निराधार नही होती, बल्कि प्रच्छन्न विचार या सोच होती है जिसे वह फिल्म के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। यदाकदा आदिवासी समाज को या आदिवासी समाज के किसी व्यक्ति विशेष को भारतीय मुख्यधारा की फिल्मो में दिखाया भी जाता है तो उसके अपने मायने होते हैं। करीब एक दशक पहले 2007 में आई 'चक दे इंडिया' फिल्म में भारतीय टीम में चार आदिवासी लड़कियों को हॉकी प्लेयर्स के रूप में दिखाया गया था। वे फिल्म में झारखंड और उत्तर भारत के राज्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं, फिल्म में एक संवाद है कि कैसा लगता होगा जब आपके देश के लोग आप ही के देश में कहें कि **"इंडिया में आपका स्वागत है"**।

आदिवासी समाज को उग्रवादी, हिंसक, अनपढ़ और समाज विरोधी दिखाने की परंपरा भारतीय फिल्मों में लगातार चली आ रही है। सरकार और व्यवस्था के खिलाफ रखकर इन्हें आतंकवादी के रूप में दिखाया जाता है। रेड अलर्ट (2009) नक्सलवाद के इर्द-गिर्द घूमती

फिल्म है, इसमें भी आदिवासियों को सरकार और व्यवस्था का विरोधी बताया गया है। इसके अलावा 'द नक्सलाइट' (1980), 'लाल सलाम'(2002), 'हजारों ख्वाहिशें ऐसी'(2003) और 'चक्रव्यूह'(2012) में भी आदिवासियों को नकारात्मक तरीके से दिखाया गया है। इन फिल्मों में उनके संगठन, पुलिस के साथ मुठभेड़, मुखबिरी वगैरह को चित्रित किया गया है।

भारतीय सिनेमा में आदिवासियत को यथार्थ रूप में दिखाने वाली कुछ ही फिल्में बनी हैं। जिनमें मृगया और न्यूटन जैसी फिल्में शामिल हैं।

मृगया

मृणाल सेन द्वारा निर्देशित फिल्म मृगया(1976) आदिवासी जीवन की पृष्ठभूमि पर बनी एक बेहतरीन फिल्म है यह कहानी उड़िया लेखक भगवती चरण पाणीग्रही की कहानी शिकार का सिनेमांतरण है। भगवती जी मार्क्सवादी साहित्य के प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं, तो मृणाल सेन भी कम्युनिस्ट पार्टी के सांस्कृतिक विभाग से जुड़े, पर कभी सदस्य नहीं रहे, वे भी सिनेमा में मार्क्सवादी कलाकार के रूप में जाने जाते हैं। अपनी कहानियों में उन्होंने सामाजिक अन्याय और अत्याचार के विरोध में उपजे घनीभूत विद्रोह को सहज भाव से प्रस्तुत किया है। शिकारी न केवल ओडिया बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का एक अनमोल रत्न है, यह कहानी आदिवासी शोषण के खिलाफ संथाली आदिवासी परिदृश्य को व्यक्त करती है।

घुनिया एक आदिवासी संथाल है जो अपने समुदाय को जंगली जानवरों से बचाने के लिए शिकार करता है 'उसने अनगिनत हिरन, साम्भर, वराह, भालू दो बाघ का भी शिकार किया था, जिसके लिए उसे डिप्टी कमीशनर के हाथों इनाम भी मिला। घिनुआ नहीं जानता था कि अच्छा आदमी अगर सत्ता की गलत नीतियों का विरोध करे तो अपराधी घोषित हो जाता है और सत्ता से मिला हुआ गोविन्द सरदार यदि सत्ता के संरक्षण में रहकर लोगों पर अत्याचार करता है, उनकी जमीन जायदाद लूट लेता है,औरतों की इज्ज़त लूट लेता है,मनमानी करता है तो उसे मारने वाले को अपराधी मानकर प्राणदंड दिया जायेगा,वह तो प्राणदंड का अर्थ भी नहीं

जानता था। मृणाल सेन मानते हैं कि मनोरंजन से परे भी फिल्मों का समाज के प्रति दायित्व व योगदान होना चाहिए। फिल्म आदिवासी जीवन तथा उसके संघर्ष की वास्तविकता को बहुत ही सहजता के साथ आम जनता तक पहुंचाती है।

न्यूटन

2017 में आई न्यूटन फिल्म केंद्र सरकार से एक करोड़ रुपए की ग्रांट पाने वाली भारत की पहली फ़िल्म है। इतना ही नहीं, इसे भारत की ओर अधिकृत रूप से ऑस्कर पुरस्कारों के लिए भी भेजा गया था। फ़िल्म के एक दृश्य में नायक न्यूटन कुमार के व्यक्तित्व पर संजय मिश्रा एक टिप्पणी करते हैं। वो कहते हैं- "पता है न्यूटन जी, आपकी परेशानी क्या है? ईमानदारी का घमंड। आप किसी पर एहसान नहीं कर रहे हैं ईमानदार होकर, ये एक्सपेक्टेड है आपसे और ईमानदारी से दिल हलका होता है, दिल पर बोझ नहीं आता"।

दृश्य यह है कि छत्तीसगढ़ के नक्सलाइट इलाक़े में एक मध्यवर्गीय नौजवान की इलेक्शन ड्यूटी लगी है। नौकरी लगने से जैसे वह गदगद है और अपना काम ईमानदारी से करने के लिए कमर कसे हुए है। बेईमानी का डीएनए इस नवयुवक में ज़रा भी नहीं है, जिस पर वो अडिग रहना चाहते हैं। भारत में लोकसभा चुनाव हो रहे हैं। कुल 90 लाख पोलिंग बूथ लगाए गए हैं। इन्हीं में से एक बूथ छत्तीसगढ़ के सुदूर आदिवासी अंचल कोण्डनार में लगाया है, जहां 76 वोटर्स हैं। वहां सीआरपीएफ़ के असिस्टेंट कमांडेंट आत्मा सिंह उसको मिलते हैं। उनकी कोई दिलचस्पी ये इलेक्शन करवाने में नहीं है। इसका कोई तुक भी नहीं है। यहां के लोकल लोग तो इलेक्शन में खड़े नेताओं को जानते भी नहीं। तिस पर यहां माओवादी सक्रिय हैं। वो चूंकि इंडियन स्टेट का विरोध करते हैं, इसलिए उसके चुनावों के भी विरोधी हैं। उम्मीदवारों की हत्या कर दी जाती है। आत्मा सिंह एक ऐसा इलेक्शन करवाने के लिए अपने जवानों की ज़िंदगी दांव पर नहीं लगाना चाहता, जिसकी लगभग किसी को ज़रूरत नहीं है, ना ही जिससे परिदृश्य में कोई बदलाव आएगा। लेकिन दूसरी तरफ़ न्यूटन बाबू हैं, जिनको जब इलेक्शन

ड्यूटी पर भेजा गया है तो वो फ्री एंड फ़ेयर वोटिंग करवाए बिना यहां से जाएंगे नहीं। जो ज़िम्मेदारी सौंपी गई है, उसे पूरा करना ही है- इसके वशीभूत होकर एक न्यूटन ही आख़िर तक डटा रहता है, लेकिन जिस चीज़ को न्यूटन अपनी ज़िम्मेदारी समझता है, वो औरों के लिए समय की बर्बादी और बेकार का मानवीय श्रम है। आत्मा सिंह पूरे समय न्यूटन कुमार को संकेत करता रहता है कि इस सबसे कोई फ़ायदा नहीं है! इससे फ़िल्म में खिंचाव और तनाव आता है। एक क़िस्म का क्लास-स्ट्रगल उभरता है। शायद यही वो चीज़ है, जो न्यूटन को चलाए रखती है। वो जानता है कि इन सबका कोई मतलब नहीं, फिर भी वो अपना काम पूरी निष्ठा से करता है। फ़िल्म के अंतिम दृश्य में आत्मा सिंह और न्यूटन कुमार एक-दूसरे के आमने-सामने ज़ोर-आज़माइश की मुद्रा में आ जाते हैं। इंडियन स्टेट के ये दो वफ़ादार कर्मचारी अपनी-अपनी ड्यूटी निभाते समय आख़िरकार परस्पर संघर्षरत क्यों हो गए- यही इस फ़िल्म में निहित विडम्बना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मृत्युंजय, (सं.), *सिनेमा के सौ बरस,* शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली-110032, दसवां संस्करण : 2017

2. जलक्षत्रि, नीरा, *साहित्य और सिनेमा के अंतरसंबंध,* शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली 110032, संस्करण : 2013

3. मीणा. प्रमोद, (सं.) *हिन्दी सिनेमा दलित-आदिवासी विमर्श,* अनन्य प्रकाशन, दिल्ली - 110032, संस्करण: 2016

4. रज़ा. राही मासूम, *सिनेमा और संस्कृति,* वाणी प्रकशन, दिल्ली - 110002

अन्य सहायक ग्रंथ

5. https://www.forwardpress.in/2020/08/analyis-tribes-indian-cinema-hindi/

6. https://www.downtoearth.org.in/reviews/understanding-adivasis-29688

7. https://www.academia.edu/35932820/The_voices_of_adivasi_in_the_Bollywood?source=swp_share